Chapter अड़तीस

वृन्दावन में अक्रूर का आगमन

इस अध्याय में अक्रूर की मथुरा से वृन्दावन की यात्रा, उनके द्वारा मार्ग में कृष्ण तथा बलराम का ध्यान करने और उनके आगमन पर दोनों भाइयों द्वारा सम्मान प्रदर्शित किये जाने का वर्णन हुआ है।

जब कंस ने कृष्ण तथा बलराम को मथुरा में ले आने का आदेश अक्रूर को दे दिया तो एक दिन बड़े तड़के अक्रूर ने अपना रथ तैयार किया और गोकुल के लिए प्रस्थान कर दिया। यात्रा करते हुए उन्होंने सोचा, ''मुझे श्रीकृष्ण के उन चरणकमलों का दर्शन प्राप्त करने का परम सौभाग्य प्राप्त होने जा रहा है जिनकी पूजा ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य देवता करते हैं। यद्यपि कंस भगवान् तथा उनके भक्तों का शत्रु है किन्तु कंस की ही कृपा से मैं भगवान् के दर्शन पाने का महान् वरदान प्राप्त करूँगा। जब मैं उनके चरणकमलों को पहले पहल देखूँगा तो मेरे सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जायेंगे। तब मैं अपने रथ से उतर कर कृष्ण तथा बलराम के पैरों पर गिर पड़ूँगा और यद्यपि मुझे कंस द्वारा भेजा गया है किन्तु तो भी सर्वज्ञ श्रीकृष्ण निश्चय ही मेरे प्रति शत्रुभाव नहीं रखेंगे।'' अक्रूर इस तरह मन ही मन सोचते हुए सूर्यास्त के समय गोकुल आ पहुँचे। वे अपने रथ से एक चरागाह में उतर पड़े और भाव-विभोर होकर

धूल में लोटने लगे।

तब अक्रूर व्रज की ओर बढ़े। जब उन्होंने कृष्ण तथा बलराम को देखा तो वे उनके चरणकमलों में गिर पड़े और दोनों भाइयों ने उनका आलिंगन किया। बाद में वे दोनों उन्हें अपने घर ले आये, उनसे यात्रा के सुखद के विषय में पूछा और नाना प्रकार से उनकी आवभगत की—उनके पाँव धोने के लिए जल, अर्घ्य तथा आसन आदि प्रदान किए, उनके चरण चापकर उनकी थकान दूर की तथा स्वादिष्ट भोजन कराया। महाराज नन्द ने भी अनेक मधुर वचनों से अक्रूर का सम्मान किया।

श्रीशुक उवाच
अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अक्रूरः—अक्रूर; अपि च—तथा; ताम्—उस; रात्रिम्—रात; मधु-पुर्याम्—मथुरा नगरी में; महा-मतिः—उच्च विचार वाला; उषित्वा—रहकर; रथम्—अपना रथ; आस्थाय—चढ़ कर; प्रययौ—रवाना हुआ; नन्द-गोकुलम्—नन्द महाराज के ग्वाल-ग्राम के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : महामति अक्रूर ने वह रात मथुरा में बिताई और तब अपने रथ पर सवार होकर नन्द महाराज के ग्वाल-ग्राम के लिए रवाना हुए।

तात्पर्य : कंस ने फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी के दिन अक्रूर को वृन्दावन जाने का आदेश दिया। अक्रूर मथुरा में रात बिताकर अगले दिन तड़के ही रवाना हो गये। उसी दिन प्रातः नारद ने वृन्दावन में कृष्ण की स्तुति की और दोपहर के बाद वहाँ व्योमासुर मारा गया। अक्रूर गोधूलि वेला में भगवान् के ग्राम में प्रविष्ट हुए।

गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गच्छन्—यात्रा करते हुए; पथि—मार्ग में; महा-भागः—परम भाग्यशाली; भगवति—भगवान् के प्रति; अम्बुज-ईक्षणे—कमल-नेत्र प्रभु; भक्तिम्—भक्ति; पराम्—अद्वितीय; उपगतः—अनुभव किया; एवम्—इस प्रकार; एतत्—यह; अचिन्तयत्—सोचा।

मार्ग में यात्रा करते हुए महात्मा अक्रूर को कमल-नेत्र भगवान् के प्रति अपार भक्ति का अनुभव हुआ अतः वे इस प्रकार सोचने लगे।

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; मया—मेरे द्वारा; आचरितम्—किया गया है; भद्रम्—अच्छा कार्य; किम्—क्या; तप्तम्—ताप सहा गया; परमम्—कठिन; तपः—तपस्या; किम्—क्या; वा—अथवा; अथ अपि—अन्यथा; अर्हते—की गई पूजा; दत्तम्—दिया गया दान; यत्—जिससे; द्रक्ष्यामि—देखने जा रहा हूँ; अद्य—आज; केशवम्—भगवान् कृष्ण को।.

[श्री अक्रूर ने सोचा]: मैंने ऐसे कौन-से शुभ कर्म किये हैं, ऐसी कौन-सी कठिन तपस्या की है, ऐसी कौन-सी पूजा की है या ऐसा कौन-सा दान दिया है, जिससे आज मैं भगवान् केशव का दर्शन करूँगा?

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमःश्लोकदर्शनम् ।
विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; एतत्—यह; दुर्लभम्—दुष्प्राप्य; मन्ये—मानता हूँ; उत्तमः-श्लोक—भगवान् का जिनकी प्रशंसा उत्तम श्लोकों द्वारा की जाती है; दर्शनम्—दर्शन; विषय-आत्मनः—विषय-भोगों में लिप्त रहने वाले के हेतु; यथा—जिस तरह; ब्रह्म—वेदों का; कीर्तनम्—कीर्तन; शूद्र—निम्न श्रेणी का व्यक्ति; जन्मनः—जन्म से, जन्मना।.

चूँकि मैं विषय-भोगों में लीन रहने वाला भौतिकतावादी व्यक्ति हूँ अतः अपने लिए उत्तम श्लोक में स्तुति किए जाने वाले भगवान् का दर्शन करने का यह अवसर प्राप्त कर पाना मैं उसी तरह कठिन समझता हूँ जिस तरह शूद्र के रूप में जन्मे व्यक्ति के लिए वैदिक मंत्रों के उच्चारण करने की अनुमति प्राप्त करना होता है।

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ।
ह्रियमाणः कलनद्या क्वचित्तरति कश्चन ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

मा एवम्—मुझे ऐसा नहीं सोचना चाहिए; मम—मुझ; अधमस्य—अधम का; अपि—भी; स्यात्—हो सकता है; एव—निश्चय ही; अच्युत—अच्युत का; दर्शनम्—दर्शन; ह्रियमाणः—खींचा जाकर; काल—समय की; नद्या—नदी के द्वारा; क्वचित्—कभी; तरति—पार करके किनारा पा जाता है; कश्चन—कोई।.

किन्तु बहुत हुआ, छोड़ो इन विचारों को, आखिर मुझ जैसे पतितात्मा को भी अच्युत भगवान् को देखने का अवसर प्राप्त हो सकता है क्योंकि काल रूपी नदी के प्रवाह में बह रहे बद्ध-आत्माओं में से कोई एक आत्मा तो कभी कभी किनारे तक पहुँच ही सकता है।

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ।

यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; अद्य—आज; अमङ्गलम्—अशुभ पापकर्म; नष्टम्—उन्मूलित; फल-वान्—फलीभूत; च—तथा; एव—निस्सन्देह; मे—मेरा; भवः—जन्म; यत्—क्योंकि; नमस्ये—नमस्कार करने जा रहा हूँ; भगवतः—भगवान् के; योगि-ध्येय—योगियों द्वारा ध्यान किये जाने वाले; अङ्घ्रि—चरणों को; पङ्कजम्—कमलवत्।

आज मेरे समस्त पापकर्मों का उन्मूलन हो चुका है और मेरा जन्म सफल हो गया है क्योंकि मैं भगवान् के उन चरणकमलों को नमस्कार करूँगा जिनका ध्यान बड़े बड़े योगी करते हैं।

कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं
द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ।
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः
पूर्वेऽतरन्यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

कंसः—राजा कंस ने; बत—निस्सन्देह; अद्य—आज; अकृत—किया है; मे—मेरे साथ; अति-अनुग्रहम्—अत्यन्त कृपा का कार्य; द्रक्ष्ये—देखूँगा; अङ्घ्रि-पद्मम्—चरणकमलों को; प्रहितः—भेजा गया; अमुना—उसके द्वारा; हरेः—भगवान् के; कृत—लिया; अवतारस्य—इस संसार में उनका अवतरण; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; तमः—संसार का अंधकार; पूर्वे—भूतकाल के मनुष्य; अतरन्—तर गये, पार कर गये; यत्—जिसके; नख-मण्डल—पैर के नाखूनों के मण्डल के; त्विषा—तेज से।

निस्सन्देह, आज कंस ने मुझे उन भगवान् हरि के चरणकमलों का दर्शन करने के लिए भेजकर मेरे ऊपर महती कृपा की है, जिन्होंने अब इस संसार में अवतार लिया है। भूतकाल में उनके चरण-नखों के तेज से ही इस भौतिक संसार के दुर्लंघ्य अंधकार को अनेक आत्माओं ने पार करके मुक्ति प्राप्त की है।

तात्पर्य : अक्रूर ने देखा कि यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि ईर्ष्यालु आसुरी कंस ने उन्हें भगवान् कृष्ण का दर्शन करने के लिए भेजकर उन पर महती कृपा की है।

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः
श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।
गोचारणायानुचरैश्चरद्वने
यद्गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो (चरणकमल); अर्चितम्—पूजित; ब्रह्म-भव—ब्रह्मा तथा शिव; आदिभिः—इत्यादि द्वारा; सुरैः—देवताओं द्वारा; श्रिया—श्री द्वारा; च—भी; देव्या—देवी; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; स-सात्वतैः—भक्तों के समेत; गो—गौवें; चारणाय—चराने के लिए; अनुचरैः—अपने संगियों समेत; चरत्—विचरण करते; वने—जंगल में; यत्—जो; गोपिकानाम्—गोपिकाओं के; कुच—स्तन से; कुङ्कुम—लाल कुंकुम चूर्ण से; अङ्कितम्—चिन्हित।

उन्हीं चरणकमलों की ब्रह्मा, शिव तथा अन्य सारे देवता, लक्ष्मीजी तथा बड़े बड़े मुनि और

वैष्णव पूजा करते हैं। उन्हीं चरणकमलों से भगवान् अपने संगियों सहित गौवें चराते समय जंगल में विचरण करते हैं और वे ही चरण गोपियों के स्तनों पर लगे कुंकुम से सने रहते हैं।

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं
स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

द्रक्ष्यामि—देखूँगा; नूनम्—निश्चय ही; सु—सुन्दर; कपोल—गाल; नासिकम्—तथा नाक; स्मित—हँसी से युक्त; अवलोक—चितवन; अरुण—लाल; कञ्ज—कमल सदृश; लोचनम्—आँखें; मुखम्—मुख; मुकुन्दस्य—भगवान् कृष्ण के; गुड—घुँघराले; अलक—बाल; आवृतम्—चारों ओर से घिरा; प्रदक्षिणम्—परिक्रमा; मे—मेरा; प्रचरन्ति—सम्पन्न कर रहे हैं; वै—निस्सन्देह; मृगाः—मृगगण, हिरन।

अवश्य ही मैं भगवान् मुकुन्द के मुख को देखूँगा क्योंकि अब हिरन मेरी दाईं ओर से निकल रहे हैं। वह मुख घुँघराले बालों से घिरा है और उनके आकर्षक गालों तथा नाक, उनकी मन्द हासयुक्त चितवन तथा लाल कमल जैसी आँखों से शोभायमान है।

तात्पर्य : अक्रूर ने एक शुभ शकुन देखा—उनकी दाईं ओर से हिरन गुजर रहे थे अतः उन्हें विश्वास हो गया कि वे भगवान् कृष्ण का दर्शन पा सकेंगे।

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो
भारावताराय भुवो निजेच्छया ।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं
मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अपि—और भी; अद्य—आज; विष्णोः—भगवान् विष्णु के; मनुजत्वम्—मनुष्य रूप को; ईयुषः—धारण किये हुए; भार—भार; अवताराय—कम करने के लिए; भुवः—पृथ्वी की; निज—अपनी; इच्छया—इच्छा से; लावण्य—सौंदर्य के; धाम्नः—धाम की; भविता—होगी; उपलम्भनम्—अनुभूति; मह्यम्—मेरे लिए; न—ऐसा नहीं है कि; न स्यात्—नहीं होयेगा; फलम्—फल; अञ्जसा—प्रत्यक्ष; दृशः—दर्शन का।

मुझे समस्त सौन्दर्य के आगार उन भगवान् विष्णु के दर्शन होंगे जिन्होंने पृथ्वी का भार उतारने के लिए स्वेच्छा से मनुष्य जैसा स्वरूप धारण किया है। इस तरह इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी आँखों को उनके अस्तित्व का फल प्राप्त हो जायेगा।

य ईक्षिताहंरहितोऽप्यसत्सतोः

स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः ।
स्वमाययात्मन्रचितैस्तदीक्षया
प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; ईक्षिता—साक्षी; अहम्—मिथ्या अभिमान से; रहितः—रहित; अपि—फिर भी; असत्-सतोः—कारण-कार्य का; स्व-तेजसा—अपनी निजी शक्ति से; अपास्त—दूर करके; तमः—अज्ञान का अंधकार; भिदा—पृथकत्व का भाव; भ्रमः—तथा भ्रम; स्व-मायया—अपनी भौतिक सृजन-शक्ति द्वारा; आत्मन्—अपने भीतर; रचितैः—रचे हुए (जीवों) के द्वारा; तत्-ईक्षया—माया पर दृष्टि डालने से; प्राण—प्राण-वायु; अक्ष—इन्द्रियाँ; धीभिः—तथा बुद्धि से; सदनेषु—जीवों के शरीरों के भीतर; अभीयते—उनकी उपस्थिति की प्रतीति होती है।

वे भौतिक कार्य-कारण के साक्षी हैं फिर भी वे उनकी झूठी पहचान से अपने को सदैव पृथक् रखते हैं। वे अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा पृथकत्व तथा भ्रम के अंधकार को दूर करते हैं। जब वे अपनी भौतिक सृजन-शक्ति पर दृष्टि डालते हैं, तो इस जगत के जीव प्रकट होते हैं और ये जीव उन्हें अपनी प्राण-वायु, इन्द्रियों तथा बुद्धि कार्यों में अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव करते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में अक्रूर ने उन भगवान् के सर्वशक्तिमान पद की स्थापना की है जिनका दर्शन करने वे वृन्दावन जा रहे हैं। भगवान् से पार्थक्य की मिथ्या धारणा का वर्णन भागवत के ग्यारहवें स्कंध (११.२.३७) में मिलता है— *भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद् ईशाद् अपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।* यद्यपि सारा जगत परब्रह्म कृष्ण से उद्भूत है किन्तु हम इस ''द्वितीय वस्तु''—इस भौतिक जगत—को भगवान् के अस्तित्व से सर्वथा पृथक् मानते हैं। इस मनोवृत्ति से हम इस ''द्वितीय वस्तु'' का उपभोग निजी इन्द्रिय तृप्ति के लिए करने का प्रयास करते हैं। अतः भौतिक जीवन के पीछे जो मनोवैज्ञानिक भाव रहता है, वह यह भ्रम है कि यह जगत ईश्वर से किसी न किसी प्रकार भिन्न है, अतः हमारे भोग के निमित्त है।

विडम्बना यह है कि निर्विशेषवादी दार्शनिक इस जगत को नितान्त मिथ्या और ब्रह्म से पूरी तरह विलग (भिन्न) मानते हैं। दुर्भाग्यवश इस जगत को इसकी दैवी प्रकृति से या दूसरे शब्दों में ईश्वर के प्रति सम्बन्ध से विलग करने के कृत्रिम प्रयास से लोग इसका पूर्ण परित्याग नहीं करते अपितु इसको भोगना चाहते हैं। जहाँ एक ओर यह सत्य है कि यह संसार नश्वर है, अतः एक प्रकार से माया है किन्तु माया की क्रियाविधि तो भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति है। इसको मानते हुए हमें इस जगत के शोषण के किसी भी प्रयास से अपने को विलग कर लेना चाहिए। बल्कि हमें इसे ईश्वर की शक्ति

मानना चाहिए। वस्तुत: जब हम यह समझ लेंगे कि यह जगत ईश्वर का है और हमारी इन्द्रिय तृप्ति के लिए नहीं है तभी हम अपनी भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर सकेंगे।

अभीयते शब्द ध्यान द्वारा भगवान् की उपस्थिति की अनुभूति की विधि का सूचक है। *श्रीमद्भागवत* के द्वितीय स्कंध में भी (२.२.३५) इस विधि का वर्णन हुआ है—

भगवान् सर्वभूतेषु लक्षित: स्वात्मना हरि:।

दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकै॥

''भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा के साथ साथ प्रत्येक जीव में रहते हैं, इस तथ्य की अनुभूति और कल्पना हमारे देखने तथा बुद्धि से सहायता लेने की क्रियाओं से होती है।''

अक्रूर बतलाते हैं कि भगवान् तो सामान्य देहधारी जीवों को व्यापने वाले अहंकार से मुक्त हैं। फिर भी वे अन्यों की ही तरह देहधारी प्रतीत होते हैं इसलिए इस कथन के विरुद्ध आपत्ति उठाई जा सकती है कि वे अहंकार से मुक्त हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस पहेली पर अपनी टीका इस प्रकार की है : ''हम यह कैसे अन्तर करें कि कोई अहंकार से मुक्त है या उससे ग्रस्त है? आपत्ति करने वाला यह तर्क दे सकता है कि यदि जीव शरीर के भीतर स्थित है, तो उसे उसी दुख तथा भ्रम का सामना करना होगा जो उसके भीतर होते हैं जिस तरह घर के भीतर रहने वाला व्यक्ति घर के भीतर के अंधेरे, गर्मी तथा सर्दी से अपने को बचा नहीं सकता चाहे वह घर से अनुरक्त हो या नहीं।'' इस आपत्ति का उत्तर इस प्रकार है : भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से अज्ञान के अंधकार के साथ ही इससे उत्पन्न पृथकत्व तथा मोह को दूर करते हैं।

यस्याखिलामीवहभि: सुमङ्गलै:-
वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभि: ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगत्
यास्तद्विरक्ता: शवशोभना मता: ॥ १२॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अखिल—सारा; अमीव—पाप; हभि:—नष्ट करने वाला; सु-मङ्गलै:—अत्यन्त शुभ; वाच:—शब्द; विमिश्रा:—जुड़े हुये; गुण—गुणों से; कर्म—कर्मों; जन्मभि:—तथा अवतारों से; प्राणन्ति—प्राण दे देते हैं; शुम्भन्ति—सुन्दर बनाते हैं; पुनन्ति—तथा शुद्ध करते हैं; वै—निस्सन्देह; जगत्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; या:—जो (शब्द); तत्—इनके; विरक्ता:—रहित; शव—मृत शरीर का; शोभना:—सजाने जैसा; मता:—माना जाता है।

भगवान् के गुणों, कर्मों तथा अवतारों से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उत्पन्न समस्त

सौभाग्य एवं इन तीनों का वर्णन करने वाले शब्द संसार को जीवनदान देते हैं, उसे सुशोभित बनाते हैं और शुद्ध करते हैं। दूसरी ओर, उनकी महिमा से विहीन शब्द शव की सजावट करने जैसे होते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी यह सम्भव आपत्ति उठाते हैं: जो व्यक्ति सामान्य गर्व से रहित है, जो पूर्णतया आत्मतुष्ट है, वह लीलाओं में कैसे संलग्न हो सकता है? इसका उत्तर यहाँ दिया हुआ है। भगवान् कृष्ण अपने प्रिय भक्तों के आनन्द के लिए ही शुद्ध आध्यत्मिक धरातल पर कर्म करते हैं, किसी प्रकार की संसारी तुष्टि के लिए नहीं।

स चावतीर्णः किल सत्वतान्वये
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ।
यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो
गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; च—तथा; अवतीर्णः—अवतरित होकर; किल—निस्सन्देह; सात्वत—सात्वतों के; अन्वये—कुल में; स्व—अपना; सेतु—धर्म के संकेत; पाल—पालने वाला; अमर-वर्य—मुख्य देवताओं का; शर्म—हर्ष; कृत्—उत्पन्न करके; यशः—अपनी ख्याति; वितन्वन्—फैलाते हुए; व्रजे—व्रज में; आस्ते—उपस्थित है; ईश्वरः—परमेश्वर; गायन्ति—गाते हैं; देवाः—देवतागण; यत्—जिसका; अशेष-मङ्गलम्—सर्व कल्याणप्रद।

वे ही भगवान् सात्वत वंश में प्रमुख देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अवतरित हुए हैं, जो उनके द्वारा निर्मित्त धर्म के नियमों को धारण करने वाले हैं। वे वृन्दावन में रहते हुए अपने यश का विस्तार करते हैं जिसकी महिमा देवतागण गाकर करते हैं और जो सबों को मंगल प्रदान करने वाला है।

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं
त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं
द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; तु—फिर भी; अद्य—आज; नूनम्—निश्चय ही; महताम्—महात्माओं के; गतिम्—गन्तव्य को; गुरुम्—तथा गुरु को; त्रै-लोक्य—तीनों जगतों की; कान्तम्—असली सुन्दरता; दृशि-मत्—आँख वालों के लिए; महा-उत्सवम्—महान् उत्सव; रूपम्—उनका साकार रूप; दधानम्—प्रकट करते हुए; श्रियः—लक्ष्मी का; ईप्सित—इच्छित; आस्पदम्—शरणस्थल; द्रक्ष्ये—देखूँगा; मम—मेरा; आसन्—आ चुके हैं; उषसः—सबेरे; सु-दर्शनाः—देखने में शुभ।

आज मैं उन्हें अवश्य देखूँगा, जो कि महात्माओं के गन्तव्य तथा आध्यात्मिक गुरु हैं। सभी

नेत्रवानों को उनके दर्शन से हर्ष होता है क्योंकि वे ब्रह्माण्ड के असली सौन्दर्य हैं। निस्सन्देह उनका साकार रूप लक्ष्मीजी द्वारा अभीप्सित आश्रय है। अब मेरे जीवन के समस्त प्रभात शुभ बन चुके हैं।

अथावरूढः सपदीशयो रथात्
प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं
नमस्य आभ्यां च सखीन्वनौकसः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; अवरूढः—उतरकर; सपदि—तुरन्त; ईशयोः—दोनों ईश्वरों के; रथात्—रथ से; प्रधान-पुंसोः—भगवान् के; चरणम्—चरणों को; स्व-लब्धये—आत्म-साक्षात्कार के लिए; धिया—उनकी बुद्धि से; धृतम्—पकड़े हुए; योगिभिः—योगियों द्वारा; अपि—भी; अहम्—मैं; ध्रुवम्—निश्चित रूप से; नमस्ये—नमस्कार करूँगा; आभ्याम्—उन दोनों को; च—भी; सखीन्—मित्रों; वन-ओकसः—वनवासियों को।

तब मैं तुरन्त अपने रथ से नीचे उतर आऊँगा और भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम दोनों के चरणकमलों को नमस्कार करूँगा। उनके पैर वही हैं, जिन्हें आत्मसाक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील बड़े बड़े योगी अपने मन के भीतर धारण करते हैं। मैं दोनों के बालमित्रों तथा वृन्दावन के अन्य समस्त वासियों को भी अपना नमस्कार निवेदित करूँगा।

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ।
दत्ताभयं कालभुजाङ्गरंहसा
प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

अपि—और भी; अङ्घ्रि—उनके चरणों के; मूले—के निकट; पतितस्य—गिरे हुए का; मे—मेरे; विभुः—शक्तिशाली प्रभु; शिरसि—सिर पर; अधास्यत्—रखेंगे; निज—अपना; हस्त—हाथ; पङ्कजम्—कमल सदृश; दत्त—देने वाला; अभयम्—अभय; काल—समय; भुज-अङ्ग—सर्प का; रंहसा—वेग से; प्रोद्वेजितानाम्—जो अत्यधिक व्यग्र हैं; शरण—शरण; एषिणाम्—ढूँढ़ने वाले; नृणाम्—मनुष्यों के लिए।

और जब मैं उनके चरणों पर गिर पड़ूँगा तो सर्वशक्तिमान प्रभु मेरे सिर पर अपना करकमल रख देंगे। जो लोग काल रूपी शक्तिशाली सर्प से अत्यन्त विचलित होकर उनकी शरण में जाते हैं, यह हाथ उनके सारे भय को दूर कर देता है।

समर्हणं यत्र निधाय कौशिक-

स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ।
यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं
स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७॥

शब्दार्थ

समर्हणम्—सादर भेंट; यत्र—जिसमें; निधाय—रखकर; कौशिकः—पुरन्दर; तथा—और; बलिः—बलि महाराज ने; च—भी; आप—प्राप्त किया; जगत्—लोकों का; त्रय—तीन; इन्द्रताम्—शासन (इन्द्र रूप में); यत्—जो (कर-कमल); वा—तथा; विहारे—लीला (रासनृत्य) के समय; व्रज-योषिताम्—व्रज की स्त्रियों की; श्रमम्—थकान को; स्पर्शेन—उनके स्पर्श से; सौगन्धिक—सुगन्धवान फूल की तरह; गन्धि—सुगन्धित; अपानुदत्—पोंछा।

उस कमल सदृश हाथ में दान देकर पुरन्दर तथा बलि ने स्वर्ग के राजा इन्द्र के पद को प्राप्त किया और रासनृत्य की आनन्द लीलाओं के समय जब भगवान् ने गोपियों के पसीने को पोंछकर उनकी थकान दूर की तो उनके मुखस्पर्श ने उस हाथ को मधुर फूल की तरह सुगन्धित बना दिया।

तात्पर्य : मानसरोवर में पाये जाने वाले कमल को पुराणों में *सौगन्धिक* कहा गया है। भगवान् कृष्ण के कमल जैसे हाथ ने गोपियों के सुन्दर मुखड़ों का स्पर्श करने से इसी फूल की सुगन्धि प्राप्त कर ली थी। रासलीला के समय घटित हुई इस विशिष्ट घटना का वर्णन दसवें स्कंध के तैंतीसवें अध्याय में हुआ है।

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं
क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मयि—मेरी ओर; उपैष्यति—उत्पन्न करेगा; अरि—शत्रु होने की; बुद्धिम्—प्रवत्ति; अच्युतः—अच्युत भगवान्; कंसस्य—कंस का; दूतः—दूत; प्रहितः—भेजा गया; अपि—यद्यपि; विश्व—हर वस्तु का; दृक्—साक्षी; यः—जो; अन्तः—भीतर; बहिः—तथा बाहर; चेतसः—हृदय का; एतत्—यह; ईहितम्—जो भी किया जाता है; क्षेत्र—खेत का (भौतिक शरीर का); ज्ञः—ज्ञाता; ईक्षति—देखता है; अमलेन—पूर्ण; चक्षुषा—दृष्टि से।

यद्यपि कंस ने मुझे यहाँ अपना दूत बनाकर भेजा है किन्तु अच्युत भगवान् मुझे अपना शत्रु नहीं मानेंगे। आखिर, सर्वज्ञ प्रभु इस भौतिक शरीर रूपी क्षेत्र के वास्तविक ज्ञाता हैं (क्षेत्रज्ञ) और वे अपनी पूर्ण दृष्टि से बद्धजीवों के हृदय के सारे प्रयासों को अन्दर और बाहर से देखते हैं।

तात्पर्य : सर्वज्ञ होने से भगवान् कृष्ण जानते थे कि अक्रूर बाहर से कंस का मित्र था। भीतर से वह कृष्ण का नित्य भक्त था।

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं
मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा ।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो
वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अपि—तथा; अङ्घ्रि—पैरों के; मूले—तल पर; अवहितम्—स्थिर; कृत-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े; माम्—मुझको; ईक्षिता—देखेंगे; सस्मितम्—हँसी से युक्त; आर्द्रया—स्नेहपूर्ण; दृशा—चितवन से; सपदि—तुरन्त; अपध्वस्त—समूल नष्ट; समस्त—सारे; किल्बिषः—कल्मष; वोढा—प्राप्त करूँगा; मुदम्—सुख; वीत—मुक्त होकर; विशङ्कः—शंका से; ऊर्जिताम्—तीव्र।

इस तरह जब मैं हाथ जोड़कर उनके पैरों पर प्रणाम करने के लिए गिरकर पड़ा रहूँगा वे अपनी हँसीयुक्त स्नेहमयी चितवन मुझ पर डालेंगे। तब मेरा सारा कल्मष छू-मन्तर हो जायेगा। तब मेरे सारे संशय दूर हो जायेंगे और मैं गहन आनन्द का अनुभव करूँगा।

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं
दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे
बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

सुहृत्-तमम्—सर्वश्रेष्ठ मित्र; ज्ञातिम्—परिवार का सदस्य; अनन्य—एकान्तिक; दैवतम्—पूजा के लक्ष्य के रूप में (आराध्य देव); दोर्भ्याम्—अपने दोनों बाहुओं में; बृहद्भ्याम्—विशाल; परिरप्स्यते—आलिंगन; अथ—तत्पश्चात्; माम्—मुझको; आत्मा—शरीर; हि—निस्सन्देह; तीर्थी—पवित्र; क्रियते—करेगा; तदा एव—तभी; मे—मेरा; बन्धः—बन्धन; च—तथा; कर्म-आत्मकः—सकाम कर्म के कारण; उच्छ्वसिति—शिथिल हो जायेगा; अतः—इसके फलस्वरूप।

मुझे अपने घनिष्ठ मित्र तथा सम्बन्धी के रूप में पहचान कर कृष्ण अपनी विशाल भुजाओं से मुझे अपने गले लगा लेंगे जिससे उसी क्षण मेरा शरीर पवित्र हो जायेगा और सकाम कर्मों से जनित मेरे भौतिक बन्धन शून्य हो जायेंगे।

लब्ध्वाङ्गसङ्गम्प्रणतम्कृताञ्जलिं
मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा
नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

लब्ध्वा—प्राप्त करके; अङ्ग-सङ्गम्—भौतिक सम्पर्क; प्रणतम्—सिर नीचा किये खड़ा हुआ; कृत-अञ्जलिम्—हाथ जोड़े; माम्—मुझसे; वक्ष्यते—बोलेंगे; अक्रूर—हे अक्रूर; तत—मेरे परिजन; इति—इन शब्दों में; उरुश्रवाः—कृष्ण, जिनकी ख्याति अपार है; तदा—तब; वयम्—हम; जन्म-भृतः—जन्म सफल हो जायेगा; महीयसा—पुरुष-श्रेष्ठ द्वारा; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; आदृतः—आदरित; यः—जो; धिक्—धिक्कार है; अमुष्य—उसका; जन्म—जन्म; तत्—वह।

सर्व-सुविख्यात कृष्ण द्वारा गले लगाये जाने के बाद मैं उनके समक्ष विनम्र भाव से सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर खड़ा रहूँगा और वे मुझसे कहेंगे, ''मेरे प्रिय अक्रूर,'' उसी क्षण मेरे जीवन का उद्देश्य सफल हो जायेगा। दरअसल जिस व्यक्ति को भगवान् मान्यता नहीं देते उसका जीवन दयनीय है।

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान्भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२॥

शब्दार्थ

न तस्य—उसका नहीं है; कश्चित्—कोई; दयितः—प्रिय; सुहृत्तमः—सर्वश्रेष्ठ मित्र; न च—न तो; अप्रियः—अप्रिय; द्वेष्यः—जिससे द्वेष किया जा सके; उपेक्ष्यः—उपेक्षित; एव—निस्सन्देह; वा—अथवा; तथा अपि—फिर भी; भक्तान्—अपने भक्तों को; भजते—भजता है; यथा—वे जैसे हैं; तथा—उसी के अनुसार; सुर-द्रुमः—कल्पवृक्ष; यद्वत्—जिस प्रकार; उपाश्रितः—शरणागत; अर्थ—इच्छित फल; दः—देने वाला।

भगवान् का न तो कोई अप्रिय है, न सर्वश्रेष्ठ मित्र है, न ही वे किसी को अवांछनीय, घृणित या उपेक्षणीय मानते हैं। साथ ही साथ अपने भक्तों से, जीस भाव से पूजा करते हैं उसी तरह प्रेम का आदान-प्रदान करते हैं जिस तरह कल्प-वृक्ष अपने पास आने वालों की इच्छाएँ पूरी करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् ने ऐसी ही बात *भगवद्गीता* (९.२९) में कही है :

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

''न तो मैं किसी से द्वेष करता हूँ, न मैं किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं सबों के लिए एकसमान हूँ। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है और वह मुझमें रहता है और मैं भी उसका मित्र हूँ।''

इसी प्रकार श्री चैतन्य महाप्रभु उन लोगों के लिए वज्र जैसे कठोर थे, जो उनसे ईर्ष्या करते थे किन्तु जो उनके दैवी उद्देश्य को समझते थे उनके लिए वे गुलाब के फूल की तरह कोमल थे।

किं चाग्रजो मावनतं यदूत्तमः

स्मयन्परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ।
गृहं प्रवेष्याप्तसमस्तसत्कृतं
सम्प्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३॥

शब्दार्थ

किम् च—और तो और; अग्र-जः—उनके बड़े भाई (बलराम); मा—मुझको; अवनतम्—सिर झुकाये मुझको; यदु-उत्तमः—यदुओं में सर्वश्रेष्ठ; स्मयन्—हँसते हुए; परिष्वज्य—आलिंगन करके; गृहीतम्—पकड़े हुए; अञ्जलौ—मेरी हथेलियों से; गृहम्—घर में; प्रवेष्य—ले जाकर; आप्त—प्राप्त किया हुआ; समस्त—सारा; सत्-कृतम्—सत्कार; सम्प्रक्ष्यते—पूछेंगे; कंस—कंस द्वारा; कृतम्—किया गया; स्व-बन्धुषु—अपने परिवार वालों के प्रति।

और जब मैं अपना सिर झुकाये खड़ा होऊँगा तब कृष्ण के बड़े भाई, यदुश्रेष्ठ बलराम मेरे जुड़े हुए हाथों को थाम लेंगे और फिर मेरा आलिंगन करके वे मुझे अपने घर ले जायेंगे। वहाँ वे सभी प्रकार की अनुष्ठान-सामग्री से मेरा सत्कार करेंगे और मुझसे पूछेंगे कि कंस उनके परिवार वालों के साथ कैसा व्यवहार कर रहा है।

श्रीशुक उवाच
इति सञ्चिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; सञ्चिन्तयन्—गम्भीरतापूर्वक सोचते हुए; कृष्णम्—कृष्ण के विषय में; श्वफल्क-तनयः—श्वफल्कपुत्र, अक्रूर; अध्वनि—मार्ग में; रथेन—अपने रथ द्वारा; गोकुलम्—गोकुल गाँव; प्राप्तः—पहुँच गया; सूर्यः—सूर्य; च—तथा; अस्त-गिरिम्—अस्ताचल; नृप—हे राजा (परीक्षित)।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजन्, मार्ग पर जाते हुए श्वफल्कपुत्र (अक्रूर) कृष्ण के विषय में इस तरह गम्भीरतापूर्वक ध्यान करते करते जब गोकुल पहुँचे तो सूर्यअस्त होने को था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की टीका है कि कृष्ण के ध्यान में मग्न होने के कारण यद्यपि अक्रूर को मार्ग भी नहीं सूझ रहा था फिर भी वे अपने रथ पर चढ़कर गोकुल पहुँच गये।

पदानि तस्याखिललोकपाल-
किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि
विलक्षितान्यब्जयवाङ्कु शाद्यैः ॥ २५॥

शब्दार्थ

पदानि—पदचिह्न; तस्य—उसके; अखिल—समस्त; लोक—लोकों के; पाल—पालकों द्वारा; किरीट—अपने मुकुटों पर; जुष्ट—रखा; अमल—शुद्ध; पाद—पैरों की; रेणोः—धूलि का; ददर्श—(अक्रूर ने) देखा; गोष्ठे—चरागाह में; क्षिति—पृथ्वी

पर; कौतुकानि—अद्भुत ढंग से अलंकृत; विलक्षितानि—स्पष्ट दिख रहे; अब्ज—कमल; यव—जौ की बाल; अङ्कुश—हाथी का अंकुश; आद्यैः—इत्यादि से।

चरागाह में अक्रूर ने उन पैरों के चिन्ह देखे जिनकी शुद्ध धूल को समस्त ब्रह्माण्डों के लोकपाल अपने मुकुटों में धारण करते हैं। भगवान् के वे चरणचिन्ह जो कमल, वांकुर तथा अंकुश जैसे चिन्हों से पहचाने जा सकते थे, पृथ्वी की शोभा को बढ़ा रहे थे।

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः
प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत
प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तत्—कृष्ण के चरणचिह्नों के; दर्शन—दर्शन से; आह्लाद—आनन्द से; विवृद्ध—अत्यधिक वर्धित; सम्भ्रमः—क्षोभ; प्रेम्णा—शुद्ध-प्रेमवश; ऊर्ध्व—सीधे खड़े; रोम—शरीर के रोएँ; अश्रु-कला—आँसुओं से; आकुल—पूरित; ईक्षणः—आँखें; रथात्—रथ से; अवस्कन्द्य—उतरकर; सः—वह, अक्रूर; तेषु—उन (चरणचिह्नों) के बीच; अचेष्टत—लोटने लगा; प्रभोः—प्रभु के; अमूनि—ये; अङ्घ्रि—पाँवों के; रजांसि—धूलकण; अहो—ओह; इति—इन शब्दों के साथ।

भगवान् के चरणचिन्हों को देखने से उत्पन्न आनन्द से अधिकाधिक विह्वल होने से शुद्ध-प्रेम के कारण अक्रूर के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये और आँखें आँसुओं से भर आईं। वे अपने रथ से नीचे कूद पड़े और उन चरणचिन्हों पर यह चीखकर लोटने लगे, ''ओह, यह तो मेरे प्रभु के चरणों की धूल है।''

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।
सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

देहम्-भृताम्—देहधारी जीवों के; इयान्—इतना; अर्थः—जीवन-लक्ष्य; हित्वा—त्यागकर; दम्भम्—गर्व; भियम्—भय; शुचम्—तथा शोक; सन्देशात्—(कंस द्वारा) आज्ञा दिये जाने से; यः—जो; हरेः—भगवान् कृष्ण के; लिङ्ग—चिह्न; दर्शन—देखने; श्रवण—सुनना; आदिभिः—इत्यादि के साथ।

समस्त जीवधारियों का जीवन-लक्ष्य यही आनन्द है, जिसे अक्रूर ने कंस का आदेश पाकर अपना सारा गर्व, भय तथा शोक त्यागकर अनुभव किया तथा अपने आपको भगवान् कृष्ण का स्मरण दिलाने वाली वस्तुओं को देखने, सुनने एवं वर्णन करने में लीन कर दिया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर बतलाते हैं कि अक्रूर ने कृष्ण के प्रति मुक्त भाव से अपना प्रेम तथा सम्मान दिखलाते हुए सारा भय त्याग दिया, भले ही वह या उनके परिवार के लोग

क्रुद्ध कंस द्वारा दण्डित क्यों न किये गए हों। अक्रूर ने राज परिवार का सदस्य होते हुए भी अपना गर्व छोड़ा और वृन्दावन-निवासी ग्वालों की पूजा की। उन्होंने अपने घर, पत्नी तथा परिवार के लिए शोक करना छोड़ दिया जो राजा कंस के कारण संकट में थे। इन सबको त्यागकर वे ईश्वर के चरणकमलों की धूल में लोटने लगे।

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरहेक्षणौ ॥ २८ ॥
किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ।
सुमुखौ सुन्दरवरौ बलद्विरदविक्रमौ ॥ २९ ॥
ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् ।
शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥ ३० ॥
उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ ।
पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥ ३१ ॥
प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ।
अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥ ३२ ॥
दिशो वितिमिरा राजन्कुर्वाणौ प्रभया स्वया ।
यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ददर्श—देखा; कृष्णम् रामम् च—कृष्ण तथा बलराम को; व्रजे—व्रज के ग्राम में; गो—गौवें; दोहनम्—गोशालाओं में; गतौ—गई हुई; पीत-नील—पीले तथा नीले; अम्बर—वस्त्र; धरौ—धारण किये; शरत्—शरदकालीन; अम्बुरुह—कमलों की तरह; ईक्षणौ—आँखें; किशोरौ—दोनों युवक; श्यामल-श्वेतौ—गहरा नीला तथा सफेद; श्री-निकेतौ—लक्ष्मी के आश्रयों; बृहत्—बलशाली; भुजौ—भुजाएँ; सु-मुखौ—दोनों के आकर्षक मुखों; सुन्दर-वरौ—अत्यन्त सुन्दर; बल—युवक; द्विरद—हाथी की तरह; विक्रमौ—चाल; ध्वज—पताका; वज्र—वज्र; अङ्कुश—अंकुश; अम्भोजैः—तथा कमल से; चिह्नितैः—चिन्हित; अङ्घ्रिभिः—पैरों से; व्रजम्—चरागाह; शोभयन्तौ—सुशोभित करते; महा-आत्मानौ—दोनों महान् आत्माएँ; स-अनुक्रोश—दयालु; स्मित—तथा हँसती हुई; ईक्षणौ—चितवनें; उदार—उदार; रुचिर—तथा आकर्षक; क्रीडौ—लीलाएँ; स्रक्-विनौ—मणिजटित माला पहने; वन-मालिनौ—तथा फूलों की माला पहने; पुण्य—शुभ; गन्ध—सुगन्धित पदार्थों से; अनुलिप्त—लेप किये; अङ्गौ—शरीर के अंग; स्नातौ—तुरन्त नहाए; विरज—निर्मल; वाससौ—वस्त्र; प्रधान—महान; पुरुषौ—दोनों पुरुष; आद्यौ—आदि; जगत्-धेतू—ब्रह्माण्ड के कारण; जगत्-पती—ब्रह्माण्ड के स्वामी; अवतीर्णौ—अवतरित होकर; जगति-अर्थे—ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु; स्व-अंशेन—अपने अपने रूपों में; बल-केशवौ—बलराम तथा केशव; दिशः—सारी दिशाएँ; वितिमिराः—अंधकार रहित; राजन्—हे राजन्; कुर्वाणौ—करते हुए; प्रभया—तेज से; स्वया—अपने; यथा—जिस तरह; मारकतः—मरकत मणि से बना; शैलः—पर्वत; रौप्यः—चाँदी का बना; च—तथा; कनक—सोने से; अचितौ—दोनों सज्जित।

तत्पश्चात् अक्रूर ने व्रज-ग्राम में कृष्ण तथा बलराम को गौवें दुहने के लिए जाते देखा। कृष्ण पीले वस्त्र पहने थे और बलराम नीले वस्त्र पहने थे। उनकी आँखें शरदकालीन कमलों के समान थीं। इन दोनों बलशाली भुजाओं वाले, लक्ष्मी के आश्रयों में से एक का रंग गहरा नीला

था और दूसरे का श्वेत था। ये दोनों ही समस्त व्यक्तियों में सर्वाधिक सुन्दर थे। जब वे युवक हाथियों की-सी चाल से अपनी दयामय मुस्कानों से निहारते चलते तो ये दोनों महापुरुष अपने पदचिन्हों से चरागाह को सुशोभित बनाते जाते। ये पदचिन्ह पताका, वज्र, अंकुश तथा कमल चिन्हों से युक्त थे। ये अत्यन्त उदार तथा आकर्षक लीलाओं वाले दोनों प्रभु मणिजटित हार तथा फूल-मालाएँ पहने थे, इनके अंग शुभ सुगन्धित द्रव्यों से लेपित थे। ये अभी अभी स्नान करके आये थे और निर्मल वस्त्र पहने हुए थे। इन आदि महापुरुषों तथा ब्रह्माण्डों के आदि कारणों ने पृथ्वी के कल्याण हेतु अब केशव तथा बलराम के रूप में अवतार लिया था। हे राजा परीक्षित, वे दोनों दो स्वर्ण-आभूषित पर्वतों के समान लग रहे थे जिनमें से एक पर्वत मरकत मणि का था और दूसरा चाँदी का था क्योंकि वे अपने तेज से सारी दिशाओं में आकाश के अंधकार को दूर कर रहे थे।

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

रथात्—रथ से; तूर्णम्—शीघ्रतापूर्वक; अवप्लुत्य—उतरकर; सः—वह; अक्रूरः—अक्रूर; स्नेह—स्नेह से; विह्वलः—अभिभूत; पपात—गिर पड़ा; चरण-उपान्ते—चरणों के निकट; दण्ड-वत्—डंडे की तरह; राम-कृष्णयोः—बलराम तथा कृष्ण के।

स्नेह से अभिभूत अक्रूर तुरन्त अपने रथ से नीचे कूदकर बलराम तथा कृष्ण के चरणों पर डंडे के समान गिर पड़े।

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
पुलकचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५॥

शब्दार्थ

भगवत्—भगवान् के; दर्शन—दर्शन से; आह्लाद—प्रसन्नता से; बाष्प—आँसुओं से; पर्याकुल—विह्वल; ईक्षणः—नेत्र; पुलक—उभाड़; आचित—अंकित; अङ्गः—अंग; औत्कण्ठ्यात्—उत्कण्ठा से; स्व-आख्याने—अपने आपको व्यक्त करने के लिए; न अशकत्—सक्षम नहीं था; नृप—हे राजन्।

भगवान् के दर्शन की प्रसन्नता से अक्रूर की आँखों में आँसू आ गये और अंगों में आनन्द का उभाड़ हो आया। उन्हें ऐसी उत्कण्ठा हुई कि हे राजन्, वे अपने आपको वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सके।

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ।
परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; तम्—उसको, अक्रूर को; अभिप्रेत्य—पहचान कर; रथ-अङ्ग—रथ के पहिए से; अङ्कित—अंकित; पाणिना—अपने हाथ से; परिरेभे—आलिंगन किया; अभ्युपाकृष्य—पास खींचकर; प्रीतः—प्रसन्न; प्रणत—शरणागतों के प्रति; वत्सलः—स्नेहवान।

अक्रूर को पहचान कर भगवान् कृष्ण ने उन्हें रथ के चक्र से अंकित अपने हाथ से अपने निकट खींचा और तब उनका आलिंगन किया। कृष्ण को प्रसन्नता हुई क्योंकि वे अपने शरणागत भक्तों के प्रति सदैव स्नेहिल रहते हैं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार, भगवान् कृष्ण ने चक्र से अंकित अपना हाथ बढ़ाकर यह इंगित किया कि कंस को मारने की उनमें क्षमता है।

सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ।
गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत्सानुजो गृहम् ॥ ३७॥
पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ।
प्रक्षाल्य विधिवत्पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सङ्कर्षणः—बलराम; च—तथा; प्रणतम्—सिर झुकाये खड़ा; उपगुह्य—आलिंगन करके; महा-मनाः—उदार; गृहीत्वा—पकड़कर; पाणिना—अपने हाथ से; पाणी—उसके दोनों हाथ; अनयत्—ले गया; स-अनुजः—अपने छोटे भाई (कृष्ण) समेत; गृहम्—घर को; पृष्ट्वा—पूछ कर; अथ—तब; सु-आगतम्—उसकी यात्रा की सुख-सुविधा के विषय में; तस्मै—उसको; निवेद्य—अर्पित करके; च—तथा; वर—श्रेष्ठ; आसनम्—आसन; प्रक्षाल्य—धोकर; विधि-वत्—शास्त्रों के आदेशानुसार; पादौ—उसके पाँव; मधु-पर्क—दूध मिश्रित शहद; अर्हणम्—सादर भेंट के रूप में; आहरत्—ले आया।

जब अक्रूर अपना सिर झुकाये खड़े थे तो भगवान् संकर्षण (बलराम) ने उनके जुड़े हुए हाथ पकड़ लिये और तब वे कृष्ण सहित उन्हें अपने घर ले गये। अक्रूर से यह पूछने के बाद कि उनकी यात्रा सुखद तो रही, बलराम ने उन्हें बैठने के लिए श्रेष्ठ आसन दिया, शास्त्रोचित विधि से उनके पाँव पखारे और आदरपूर्वक मधुमिश्रित दूध दिया।

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमाद्दृतः ।
अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

निवेद्य—दान में देते हुए; गाम्—गाय; च—तथा; अतिथये—मेहमान को; संवाह्य—पाँव दबाकर; श्रान्तम्—थके हुए; आदृतः—आदरपूर्वक; अन्नम्—भोजन; बहु-गुणम्—विविध स्वादों वाला; मेध्यम्—अर्पण योग्य; श्रद्धया—श्रद्धापूर्वक; उपाहरत्—अर्पित किया; विभुः—सर्वशक्तिमान प्रभु ने।

सर्वशक्तिमान भगवान् बलराम ने अक्रूर को एक गाय भेंट की, उनकी थकान दूर करने के लिए उनके पाँव दबाये और तब परम आदर तथा श्रद्धा के साथ भाँति-भाँति के उत्तम स्वादों से युक्त और उचित विधि से पकाया भोजन खिलाया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार अक्रूर कृष्ण तथा बलराम के घर द्वादशी के दिन गये और उस दिन रात में उपवास नहीं तोड़ना चाहिए। किन्तु अक्रूर ने इस शिष्टाचार को छोड़ दिया क्योंकि वे भगवान् के घर का भोजन पाने के लिए उत्सुक थे।

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ।
मखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसे; भुक्तवते—खा चुकने के बाद; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; रामः—बलराम; परम—परम; धर्म-वित्—धर्म के ज्ञाता; मुख-वासैः—मुख को सुगंधित करने वाले द्रव्यों से; गन्ध—सुगंध से; माल्यैः—फूल की मालाओं से; पराम्—सर्वोच्च; प्रीतिम्—सन्तोष; व्यधात्—व्यवस्था की; पुनः—आगे भी।

जब अक्रूर भरपेट खा चुके तो धार्मिक कर्तव्यों के परम ज्ञाता भगवान् बलराम ने उन्हें मुख को मीठा करने वाले सुगंधित द्रव्य दिये और साथ ही सुगन्धियाँ तथा फूल-मालाएँ भेंट कीं। इस प्रकार अक्रूर ने एक बार फिर परम आनन्द प्राप्त किया।

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ।
कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

पप्रच्छ—पूछा; सत्-कृतम्—सत्कार किया गया; नन्दः—नन्द महाराज; कथम्—कैसे; स्थ—तुम रहे हो; निरनुग्रहे—निर्दय; कंसे—कंस के; जीवति—जीते हुए; दाशार्ह—हे दशार्ह वंशज; सौन—पशु की हत्या करने वाला, कसाई; पालाः—पालने वाला; इव—जिस तरह; अवयः—भेड़ की।

नन्द महाराज ने अक्रूर से पूछा: हे दशार्ह वंशज, उस निर्दयी कंस के जीवित होते हुए आप सभी किस तरह अपना पालन करते हैं? आप तो कसाई के संरक्षण में भेड़ जैसे हैं।

योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान्क्रोशन्त्या असुतृप्खलः ।
किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—जिसने; अवधीत्—मारा; स्व—अपने; स्वसुः—बहन के; तोकान्—बच्चों को; क्रोशन्त्याः—चिल्लाती हुई; असु-तृप्—स्वार्थी; खलः—क्रूर; किम् नु—तो क्या; स्वित्—निस्सन्देह; तत्—उसको; प्रजानाम्—प्रजा का; वः—तुमसे; कुशलम्—कुशलता; विमृशामहे—हमें अनुमान लगा लेना चाहिए।

उस क्रूर स्वार्थी कंस ने अपनी बिलखती हुई दुखित बहन की उपस्थिति में ही उसके बच्चों को मार डाला। तो फिर हम तुमसे, जो कि उनकी प्रजा हो, कुशलता के विषय में पूछ ही क्या सकते हैं?

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ।
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; सू-नृतया—अत्यन्त सत्य तथा अच्छे; वाचा—शब्दों से; नन्देन—नन्द महाराज द्वारा; सु—अच्छी तरह; सभाजितः—सम्मानित; अक्रूरः—अक्रूर ने; परिपृष्टेन—पूछे जाने पर; जहौ—दूर कर दी; अध्व—मार्ग की; परिश्रमम्—थकावट।

पूछताछ के इन सत्य तथा मधुर वचनों से नन्द महाराज द्वारा सम्मानित होकर अक्रूर अपनी यात्रा की थकान भूल गये।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''वृन्दावन में अक्रूर का आगमन'' नामक अड़तीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।